फातिमा, पुर्तगाल
गुरुवार, मई २२, २००८

संदेश संख्या – १४६

पवित्र फातिमा मारिया

आज प्रातःकाल, यह शरीर स्वयं को 'माँ' के गर्भ में पाया–बिल्कुल निःशब्द एवं निर्विचार अवस्था में । फिर भी, इस शरीर के आस–पास उपस्थित लोगों को सम्प्रेषित करने के लिए शब्द निकल रहे थे क्योंकि वे अपने अनुबंधन के बावजूद भी शायद समझदारी की ऊर्जा में थे । अस्तित्व के इस परमानन्द में, असीम शून्यता की इस जीवन्तता में कोई केन्द्र बिन्दु न था फिर भी एक अद्‌भुत आकर्षण था । न कोई परिधि थी, न कोई बंधन था और न ही कोई सीमाबद्धता । फिर भी गर्भ था, माँ थी । वहाँ विस्मयकारी जागृति थी और समाधि की असीम ऊर्जा भी । इस अवस्था में हो रहे अत्यधिक अश्रु–प्रवाह के बावजूद यह शरीर बगल के कमरे में स्थित मेजबान को, दूरभाष द्वारा यह सूचित कर सका कि यह शरीर आज रिट्रीट के समय–सारणी का पालन करने में समर्थ नहीं भी हो सकता है, अतः मेजबान कृपया उपस्थित क्रियावानों का यथासम्भव ख्याल रखें । उस समय शरीर का जैविक–काल (६६ वर्ष) समाप्त हो चुका था क्योंकि वह दिव्य माँ के कालातीत गर्भ में था । वह पुनः भ्रूण बन गया था, बिना किसी भी प्रकार के विखण्डन के । वहाँ द्वैत न था–माँ और शिशु के बीच भी नहीं ।

कल शिवेन्दु जिस नये एवं भव्य कैथेड्रल में गया था, वहाँ भी लगभग इसी तरह की घटना घटी थी । अद्वितीय रूप से सुन्दर कैथेड्रल एक विशाल गर्भ की तरह प्रतीत हुआ और बीच में झूलता हुआ यीशु के शरीर की मूर्त्ति गर्भ में भ्रूण की तरह अनुभूत हुआ । उस मूर्ति के चेहरे पर न कोई उदासी थी, न कोई व्यथा, न दर्द और न ही कोई वेदना । यह एक शिशु का दीप्त चेहरा था जो सुखबोध में था तथा माँ के गर्भ में होने के कारण परमानन्द में था । वस्तुतः शिवेन्दु ने स्वयं को उस मूर्ति के रूप में सूली पर झूलता हुआ पाया ।

समझदारी की ऊर्जा के विस्तार हेतु शिवेन्दु द्वारा किए जा रहे विश्व–यात्रा के दौरान जो लोग भी उनसे मिलने आते हैं, उनमें से ६० सुनते ही नहीं । क्योंकि उनमें अतीत की पूर्वधारणाओं, पूर्वनिर्धारित निष्कर्षों, पूर्वाग्रहों और भ्रांतियों का बहुत ज्यादा दबाव होता है । जो सुनते हैं उनमें से ६० उस शिक्षा को समझ नहीं पाते या उसके अभ्यास के प्रति समर्पित नहीं हो पाते अर्थात् केवल १० ही स्वाध्याय एवं तप करने हेतु साधक बनते हैं । इनमें से पुनः ६० साधक विभेदकारी चित्त ''मैं'' रूपी धुएँ में ही फँसे रह जाते हैं, और अभ्यन्तर की अग्नि तक नहीं पहुँच पाते । जो अग्नि देख पाते हैं वे ही शिष्यत्व में प्रस्फुटित हो पाते हैं । ऐसे शिष्यों में ६० गुरु और शिष्य के बीच विभक्ति (विभाजन) में फँसे रहते हैं । उनमें से केवल १० ही अन्ततोगत्वा भक्ति (दिव्यता) में जागृत हो पाते हैं । कहाँ है वे नगण्य भक्तगण? कहाँ हैं ऐसा पूर्ण समर्पण ?

क्या शिवेन्दु नितान्त मूर्ख है? यह जानते हुए भी कि भक्त विरले पाये जाते हैं, वह सम्पूर्ण विश्व में भ्रमण करता रहता है । लेकिन तब, इस मूर्खता में भी बहुत आनन्द है ।

।। शिवेन्दु की मूर्खता की जय ।।